International Journal of Applied Research 2019; 5(1): 482-483

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 482-483
www.allresearchjournal.com
Received: 25-11-2018
Accepted: 27-12-2018

डॉ. शंकर शरण प्रसाद
+2 बासुदेव मिश्र उ.वि. सिमरी, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. शंकर शरण प्रसाद
+2 बासुदेव मिश्र उ.वि. सिमरी, दरभंगा, बिहार, भारत

उपासना और भक्ति

डॉ. शंकर शरण प्रसाद

सारांश
उपासना की व्युत्पति है–उप अर्थात् समीप से आसन अर्थात् अवस्थिति। जिस अवस्थिति में जीव को ईष्वरीय सत्ता से सानिध्य प्राप्त होता है उसकी प्रक्रिया को उपासना कहते हैं। जो अखंड है, विभु है, एक रूप है, वही बंधन के द्वारा सीमित हो जाता है और तब उसके अनेक खंड हो जाते हैं। वह विभु आत्मा बंधन के प्रभाव से देह में बद्ध होकर देही हो जाता है और देही होने के कारण अत्पक्ष हो जाता है। बद्धता बढ़ने पर जड़ता बढ़ती जाती है और चेतनात्व स्वरूप तिरोहित हो जाता है। मन यदि प्राण गति के प्राप्त होकर स्थूल दषा में आकर वाक् हो जाता है तब मन उस वाक् में लीन हो जाता है और चित् का अभाव हो जाता है। इस प्रकार प्राण में वाक्, वाक् से वायु और इसी प्रकार अंत में पृथ्वी बनती है। पृथ्वी जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाष में और इस प्रकार वाक् प्राण में और प्राण मन में लीन हो जाता है। इस प्रकार सृष्टि और लय का प्रवाह चलता रहता है। अब बंधन से मुक्ति ही परम पुरुषार्थ कहलाता है। जिस क्रिया के द्वारा यह जीव मुक्त होता है वही उपासना है।

मुख्य–शब्दः उपासना, भक्ति

प्रस्तावना
आवश्यकता हो सकती है कि उपासना के द्वारा मुक्ति ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान की समानता को प्राप्त करता है और तब उसमें बंधन की प्रशवित नहीं होती, वह ईश्वर से एक रूप होकर जीवात्वभाव से मुक्त हो जाता है और फिर उसके जीवत्व का बंधन नहीं रहता। परन्तु जीवात्मा और परमात्मा के ज्ञान का योग सरल नहीं है बल्कि अत्यधिक दुष्कर है। तभी तो अर्जुन जैसे विशिष्ट व्यतीत ने गीता के श्री कृष्ण से पुछा–

चंञ्चलं हि मनः कृष्ण–प्रभावि बलवद् दृढ़म।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वाचोरिव सुदुष्करम्।।

अर्थात् मन का विग्रह वायु के रोकने के सदृश्य दुष्कर है। तब भगवान कृष्ण ने इसका उपाय बतलाते हुए कहा –

अर्सशय महावाहो मनी दुर्निग्रह चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येना च गृह्यते।।

महर्षि पतंजलि ने इसी मनोविग्रह के लिए–चित्रवृत्ति निरोधः के लिए–'साधनपाद' में अनेक उपाए बतलाए हैं। जीवात्मा का मन अत्यंत अस्थिर है, अत्यन्त चंचल है, परमेश्वर का मन स्थिर नितान्त शान्त है। जिस योग में जीव का मन ईश्वरीय मन का सानिध्य प्राप्त करता है, उसे उपासना कहते हैं। दो वस्तुओं का योग होने पर उनको समीकरण होने लगता और विशिष्ट धर्मा का गुण अल्पधर्माकेन्द्रय में संक्रान्त हो जाता है। यह तो सामान्य ज्ञान की बात है कि अधिक उष्ण जल में यदि अल्प यात्रा में शीतल जब मिला दे तो वह भी उष्ण हो जाता है। इसी प्रकार अधिक मात्रा वाले शीतल जल में यदि अल्प यात्रा में उष्ण जल मिला दे तो वह भी शीतल हो जाता है। यह भी प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि प्रचंड प्रज्वलित अग्नि के समीप रखे हुए पदार्थ में अग्नि की दाहिका शक्ति संक्रान्त कर जाती है और वह पदार्थ भी दाहक हो जाता है। इसी न्याय से ईश्वर के मन में योग होने पर ईश्वर की शक्ति अनायास जीव में संक्रान्त होती है और तब उसे शास्त्र वर्णित अष्ट सिद्धियाँ अनायास प्राप्त होती है। यदि ठीक विधि से उदासता की जाए तो उपास्थ की शक्ति निश्चय ही उपासक में शनैः शनैः सँचारित हो जाएगी।

यदि ऐसा नहीं होता तो समझना चाहिए कि उपासना की पद्धति में अवस्य कोई त्रृटि है। सभी राम कृष्ण परमहँस ने कहा है–जिसकी चिन्ता की जाती है, उसकी सत्ता आ जाती है।''[2]

''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति''

उपर्युक्त योग तीन प्रकार से संभव है– कर्म के द्वारा, ज्ञान के द्वारा और भक्ति के द्वारा। सकाय युग कर्म भी बंधन के कारण होते हैं। शुभ कर्मो के पुण्य के फलस्वरूप स्वार्गादि दिव्य लोग प्राप्त होते हैं और उनके क्षय होने पर पुनः मृत्युलोक में आना पड़ता है जैसा कि गीता कहती है–

ते तं भक्ता स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति

सच और ज्ञान को ही ब्रह्म कहा जाता है। ज्ञान की प्राप्ति ब्रह्म की शक्ति है। अर्थात बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती।
जो कुछ इस पिण्ड में है वह सब ब्रह्माण्ड में है। इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई एक आत्मा को ही यथार्थ रूप से जान ले तो वह समस्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को परमार्थ तत्व के संबंध में अंतिम उत्तर दिया था–

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिव्यासितव्यो मैत्रेयि।
आत्मनि खलु अरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इंद सर्व विज्ञार्त भवति।।

आत्मा के दृष्ट, श्रृत, मत और विज्ञात होने पर यह सब विदित हो जाता है। अतः आत्मश्रान ही ज्ञानमार्ग है। इसमें ज्ञान की प्रधानता रहती है और साधक आत्मज्ञान प्राप्तकर मुक्ति अविधा, अज्ञान के कारण ही जीव में जीवत्व है, अन्यथा वह भी तो ईश्वरांश ही है जैसा कि तुलसीदास जी ने कहा है–

ईश्वर अंश जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

तीसरा मार्ग भक्ति मार्ग है। यह मध्यम मार्ग ळें यह मार्ग सर्वजन सुलभ है। रामकृष्ण परमहंस जिन्होंने सभी धर्मों एवं सभी मार्गों से ईश्वर की उपासना की थी, वे भी भक्ति को ही श्रेष्ठ कहा है। भक्ति तो राजमार्ग है जिसपर विकलांग–लूल्हे, लंगड़े, अंधे, काने–भी चल सकते है। भक्ति मार्ग ही एक ऐसा मार्ग है जिसमें इसका दुरुपयोग नहीं हो सकता कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग में दुरूपयोग की पूर्ण संभावना बनी रहती है। कारण यह है कि भक्ति की उत्पति जहाँ प्रीति से होती है और भक्ति में जहाँ पूर्ण आत्मोत्सर्ग की भावना वनी रहती है वहाँ पर किसी प्रकार के दुरूपयोग की कोई संभावना नहीं है। भक्तिमार्ग में इसीलिए भक्त में अहंकार होने की भी गुँजाईश नहीं है। ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग में मिथ्या अहंकार की गुँजाइश बराबर बनी रहती है जो अधोगति का फूल है। ज्ञानमार्ग जहाँ अभावात्मक है वहाँ भक्तिमार्ग भावात्मक है। ज्ञानमार्ग में यह समझने का अभ्यास करना पड़ता है कि 'सारी दुनिया मिथ्या है' तो भक्ति मार्ग समझना पड़ता है' 'सबकुछ भगवान का ही रूप है।' यद्यपि दोनों मार्ग एक ही मुकाम पर पहुँचते हैं लेकिन भक्ति–मार्ग आसान है, ज्ञान मार्ग उतना आसान नहीं। ज्ञानयोग से परमात्मज्ञान होता है और तब मोक्ष होता है। भक्तियोग भी प्रथम ज्ञान उत्पादन कर तब मोक्ष प्रदान करता है। लेकिन भक्तिमार्ग सरल है, सुगम है और सर्वसुलभ भी है। इसीलिए कालिकाल में इसे श्रेयस्कर कहा गया है–

कलियुग योग न जग्य ग्याना।
एक आधार राम गुन गाना।।

ईश्वर जिसका वरण करता है वही उसको जान सकता है। वह उपदेश, शुद्धि अथवा अध्ययन के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। भक्ति के द्वारा साधक को सभी चीजें मिल जाती है। तास्विक दृष्टि से से कर्म, ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है। तीनों परम भाव के ही मार्ग हैं–

संदर्भ सूची

1. गीता– 6/34
2. वेदों के भारतीय संस्कृति–पं. आशादत ठाकुर
3. रामकृष्ण वचनामृत द्वितीय अध्याय
4. गीता–9/21
5. वृहदारण्यक उपनिसद–4/5
6. रामचरितमानस–उत्तरकांड
7. अध्यात्म–तत्व–सुधा–विनोबा भावे